# हिम-हास

रामकुमार वर्मा

HIM-HAS

Poetry

by

**Ram Kumar Verma**




| | |
|---|---|
| ग्रन्थ-संख्या | २८४ |
| प्रथम संस्करण<br>द्वितीय संस्करण | सन् १९४१ ई०<br>१९८४ ई० |
| मूल्य | पच्चीस रुपये मात्र |
| प्रकाशक और विक्रेता | भारती भंडार<br>लीडर भवन, लीडर रोड,<br>इलाहाबाद–२११००१ |
| मुद्रक | लीडर प्रेस, इलाहाबाद-१ |
| आवरण | सोना घोषाल |

स्पष्ट विरोध मैंने तब अनुभव किया। प्रणय-ग्रंथि में उलझे हुए शब्द की तरह मैं विवश-सा था। व्रीड़ा शब्द-हीन होती है। मेरी कविता भी शब्द-हीन थी।

उपत्यकाएँ, हिम-शैल, बादल, पुष्प-राशि, वृक्ष-राजि ने मुझे हज़ारों भावनाएँ और कल्पनाएँ दी। जिस वेग से वे हृदय में उठ रही थीं, उस वेग से भाषा नहीं चल रही थी। किसी भाँति साहस कर उस सौंदर्य को बाँधने का प्रयत्न मेरी भाषा ने किया। किन्तु मेरे पाठक मेरी भाषा में सहस्रों का गुणा कर अपनी कल्पना से काश्मीर के सौंदर्य को देखने का प्रयत्न करें, तो मेरे साथ न्याय होगा।

जुलाई १९३५ रामकुमार वर्मा

# दूसरे संस्करण की भूमिका

संसार भर में प्राकृतिक सौन्दर्य के दृष्टिकोण से हमारे देश में काश्मीर को जो मनोरमता है, वह बहुत कम देशों को प्राप्त है। सर्वोच्च गिरि-माला, उसके क्रोड से निकलने वाली पवित्र और गुण-कारी जल से परिपूर्ण सरिताएँ, समीपवर्ती उपजाऊ भूमि, अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प, चिनार और सफेदा पेड़, ललित लतिकाएँ, विविध ऋतुओं की नृत्यमयी शोभा इस भू-भाग की विशेषता है। इसीलिए महाकवि निराला ने लिखा

भारति जय विजय करे,<br>
कनक शस्य कमल धरे।

मुकुट शुभ्र हिम तुषार,<br>
प्राण प्रणव ओंकार<br>
ध्वनित दिशाएँ उदार<br>
शतमुख शत रव मुखरे।

इस प्रकार हमारा देश प्रकृति का क्रीडांगण है। जिस प्रकार शरीर के अवयवों में मुख की शोभा विशेष होती है, उसी प्रकार हमारे देश के मस्तक की शोभा भी अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक है। हमारे देश का मस्तक यह काश्मीर ही है जहाँ प्रकृति अपनी अनुपम छटा से नित्य नवीन रूप धारण करती है। 'प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।' उपत्यकाएँ, हिम-शैल, बादल, पुष्पराशि, वृक्षराजि ने काश्मीर की सुषमा को सौन्दर्य के एक नवीन स्वर्ग के रूप में सुसज्जित किया है।

समुद्र तल से लगभग ७ से १० हजार फीट ऊपर पचासी हजार वर्गमील में धरती का यह स्वर्ग फैला हुआ है। आकाशगंगा की भाँति इसके ठीक मध्य में झेलम नदी प्रत्येक ऋतु में प्रवहशीला है। नीहारि-काओं की भाँति अनेक झीलें, नहरें और झरने स्थान-स्थान पर अपने ज्योति-मण्डल का निर्माण कर रहे हैं। आपका स्वागत करने के लिए

'वानिहाल' एक सिंह द्वार की भाँति नौ हजार फीट ऊँचा मस्तक उठाये आपकी प्रतीक्षा करते हुए मिलेगा। प्रवेश करते ही आप एक विशाल साम्राज्य को देखकर मुग्ध हो जायँगे जहाँ मुस्कुराती हुई कलिकाएँ और हँसते हुए फूल हलकी हवा की तरंगों में अप्सराओं और गन्धर्वों की भाँति नृत्य करते ज्ञात होंगे। विविध प्रकार के रंग-बिरंगे दृश्य, कल-कल नाद करते हुए निर्झर, किनारे झूमती हुई सुगन्धि से परिपूर्ण लताएँ इन्द्र के नन्दन कानन को लज्जित करती हुई ज्ञात होंगी। इस स्वर्ग को ज्योति मण्डल से घेरने वाला श्वेत हिम से आच्छादित शैल ही शरीर है जिसकी विशाल बाहों में यह सारा सौन्दर्य केन्द्रित हो गया है। यह सौन्दर्य का अधिराज उत्तर में स्थित ध्रुव नक्षत्र की भाँति हमें सुदृढ़ता और निर्भीकता का सन्देश दे रहा है। कोई शक्ति इस स्वर्ग को हमसे नहीं छीन सकती। यह धरती का स्वर्ग हमारा है और हमारा रहेगा।

बारहवीं शताब्दी में महाकवि कल्हण ने 'राजतरंगिणी' की रचना कर इस धरती के स्वर्ग की प्रशस्ति कही है। महाकवि कल्हण ने अपनी इस रचना मे सातवीं से बारहवी शताब्दी तक काश्मीर की पाँच सौ वर्ष की सभ्यता का इतिहास निरूपित किया है। आठवीं और नवीं शताब्दी में वास्तुकला की चरम उन्नति का केन्द्र काश्मीर ही रहा है। ललितादित्य के शासनकाल (सन् ७२४ से ७६० ई०) में सूर्य भगवान का जो मन्दिर निर्मित हुआ वह 'मार्तण्ड मन्दिर' के नाम से भारतीय वास्तुकला के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों और बौद्धों के पवित्र स्मारकों से यह भू-भाग यशस्वी रहा है। सम्राट् कनिष्क ने बौद्ध धर्म की चौथी संगीति काश्मीर मे ही सम्पन्न करायी थी जिसके संरक्षक बौद्ध आचार्य वसुमित्र थे। सम्राट् अशोक के शासन काल में यह विद्या का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसी स्थान से भारतीय कला और संस्कृति की किरणें सुदूर देशों में पहुँची है। हमारे देश की स्वतंत्रता का यह प्रहरी अपने विशाल पर्वतों की ढालों से आक्रमणकारियों को सदैव ही असफल बनाता रहा है। इस प्रकार काश्मीर हमारी संस्कृति, राजनीति और इतिहास का सुदृढ़ प्रतीक है। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री ने इस पृथ्वी के स्वर्ग में भ्रमण कर अपने को धन्य समझा था।

यहाँ प्रवेश करते ही हृदय में सहस्रों कल्पनाएँ उदय हो जाती हैं। चन्दनवाडी, फिरोजपुरी नाला, पहलगाँव, गुलमर्ग, खिलनमर्ग, मानसबल, डल झील आदि ऐसी विभूतियाँ हैं जिनको देखकर नेत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं।

सन् १९३५ में मुझे उस पृथ्वी के स्वर्ग में भ्रमण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय मेरे हृदय में जो भावनाएँ और कल्पनाएँ उठी थीं, उन्हीं से हिम-हास की रचना हुई। इसका प्रथम संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया था। अनेक वर्षों तक 'हिम-हास' विस्मृति के मौन में ही खोया रहा। एक दिन भारती भण्डार के व्यवस्थापक श्री विश्वनाथ झा मेरे यहाँ आये और उनकी दृष्टि हिम-हास पर पड़ी। उन्होंने तत्काल इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया। अपनी सुरुचि से उन्होंने इसे बड़े कलात्मक ढंग से संवारा है, इसके लिए मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

साकेत, इलाहाबाद
बौद्ध पूर्णिमा १९८४

रामकुमार वर्मा

पूज्य डा० धीरेंद्र वर्मा

को

सादर समर्पित।

रामकुमार

# संकेत

पृष्ठ

# हिम-हास

## १

## पुण्य-ज्योति

ीलाकाश के शरीर से साँस-सी निकल कर यह चंद्र-
मेरी पृथ्वी में जीवन डाल रही है। हिम से धवल

गिरि-शृंगों पर यह भक्तों के पवित्र मानस में बसी हुई पुण्य-ज्योति के समान है।

२

# काश्मीर के पुष्प

कितना सौंदर्य ! कितनी सुषमा !!

जहाँ देखो, इस उपत्यका में फूल ही फूल बिखरे हु
त्येक स्थल पर फूलों की राशि अपनी ही विपुलता में f
ई है। यहाँ इतने फूल क्यों हैं ?

संभव है, प्रकृति ने इतने फूल मेरे सामने रख कर
हो—

"मनुष्य ! विश्वात्मा कितना महान् है ! कितना
शाली है ! कितना सुंदर है ! तू इतने पुष्पों से उस

कर ! तब क्या विराट् की पूजा के लिए ही प्रकृति ने काश्मीर में इतने पुष्प विकसित किए हैं ?

## ३

# आई घटा

एक पथिक ने सफ़ेदा वृक्ष की चोटी पर लहराते हुए पल्लव के समान ही झूम कर कहा—

'आई घटा मेरे पिया नहीं आए'

उसी वृक्ष पर एक पक्षी वायु के वेग से अपने को सम्हालने के लिए अपने पंखों को समेट कर—सिकुड़ कर—बैठा हुआ था। वायु के प्रवाह में विवश हो कर झूल रहा था। गीत की ध्वनि उस तक पहुँची या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर वह उस वृक्ष पर अकेला नहीं बैठ सका। दूसरे ही क्षण उड़ कर न जाने आकाश के किस कोने में चला गया!

मैं भी एकाकी हूँ। परिस्थितियों के प्रवाह से अपने को सम्हालने के लिए मैं भी पंखों के समान अपने बाह्य उपकरणों

कर—संकुचित हो कर—बैठा हूँ। मेरे कानों में भी ध्वनि पड़ रही है—

'आई घटा मेरे पिया नहीं आए'

क्या मैं भी परिस्थिति-वेग से आंदोलित अपने शरीर के वृक्ष को छोड़ कर आकाश के किसी कोने में उड़ कर नहीं चला जा सकता? उस गीत की एक-एक तरंग मेरा उपहास कर मुझ से कह रही है—

तुम उस निर्बल पक्षी से भी बल-हीन हो!

४

## 'गत्सु'

इन वृक्षों की शाखाओं ने हिम को किस प्रकार अपने शरीर से लिपटा रक्खा है, इस पर दृष्टि न डालते हुए उस पहाड़ी बालक ने अपनी बकरियों के झुंड में किसी उद्दंड बकरी के बड़े-बड़े बालों को पकड़ कर, उसे एक लकड़ी मार कर कहा—'गत्सु'[1]।

मैंने कहा—क्यों रे, वह पेड़ का बर्फ़ कब तक पिघल जायगा ?

उसने कहा—कल दोपहर जब मैं फिर बकरी चराने आऊँगा तब तक यह पिघल जायगा। पर फिर दो घंटे बाद यही हाल हो जायगा।

मैंने कहा—क्या बर्फ़ एक बार ही चू जाता है ?

---

[1] काश्मीरी भाषा में 'गत्सु' का अर्थ 'चल' है।

उसने कहा—हाँ, जिस तरह बकरी जब पानी से भीग जाती है तो जैसे पानी बूँद बूँद गिरता है, उसी तरह बर्फ़ पिघल जाता है।

मैंने कहा—हाय रे तेरी बकरी! प्रत्येक उदाहरण में बकरी। कहाँ मेरी स्वच्छ, अमृत के समान पवित्र हिम-राशि और कहाँ तेरी दुर्गंधि से भरी हुई बकरी!!

पर मैंने शायद यह नहीं सोचा कि हम आत्मा के पवित्र संदेशों को प्रतिदिन न जाने कितनी बार संसार की घटनाओं से जोड़ कर—उदाहरण दे कर—उन्हें हिम से बकरी बना दिया करते हैं।

५

# चंदन बाड़ी

दो पथिक थके हुए आ रहे थे। पहलगाम की सीमा पर उन्होंने रुक कर चश्मेंसे पानी पिया और तिरछे चिनार वृक्ष की छाया में बैठ गए।

एक ने कहा—चंदन बाड़ी वास्तव में प्रकृति का मनोहर क्रीड़ा-क्षेत्र है। इतनी सुंदर वृक्ष-राजि, इतनी सुंदर नदी और इतनी सुंदर हवा!

दूसरे व्यक्ति ने कहा—और हिम के वे तीन पर्वत!!

प्रथम व्यक्ति ने उसी स्वर में कहा—और वे छोटे छोटे कुंज कितने शीतल और शांतिदायक हैं! चंदन बाड़ी पृथ्वी

नहीं, स्वर्ग है।

मैं यह प्रवास-कथा सुन रहा था। मैंने उनकी बातों में अपनी बात डालते हुए कहा—तो आप स्वर्ग से क्यों चले आए?

प्रथम व्यक्ति ने हँसते हुए कहा—हम सुरपुर-वासी स्वर्ग से बहुत जल्द ऊब जाते हैं। पृथ्वी पर आना चाहते हैं।

मैंने कहा—स्वर्ग से लौटे हुए देवता, तब शांति कहाँ है?

६

## जल-प्रपात

यह देखो—यह जल-प्रपात !

जल कितनी शिलाओं के ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, हो कर

निकल रहा है। उसी प्रकार इस संसार में पड़े हुए पत्थर के समान व्यक्ति के चारों ओर से समय का अविराम प्रवाह जा रहा है। जिस प्रकार जल के संघर्ष से पत्थर भी घिसता और छोटा होता रहता है, उसी प्रकार समय के प्रवाह से मनुष्य का जीवन भी धीरे धीरे घटता जाता है।

तब क्या हमारे जीवन को स्पर्श करता हुआ समय का प्रवाह भी एक भीषण जल-प्रपात है ?

७

# फ़ीरोज़पुरी नाला

ि अंतराल में बहता हुआ नाला।

ध्वनि बहुत दूर से सुनाई पड़ी जिस प्रकार संसार
तुएँ अपने अस्तित्व की घोषणा बहुत जोर से करती
वेग से वह नाला पर्वत के हृदय को हिला देना
मैंने कहा—इसका प्रयास वैसा ही है जैसा मेरी
सारे शरीर में उग्र रूप से प्रवाहित है।

पर नाले के समान मेरी साँस भी नहीं सोचती कि यह प्रवाह कब तक है !

८

# पहलगाम

नीचे छोटी-सी बस्ती है। उसका नाम है
के तो ऐसा ज्ञात हुआ कि कोई माँ अपनी
नन्हें से शिशु को रखे हुए प्रेम से उसका मुख
।

नदी ही माता के वक्ष से निकली हुई दुग्ध-

धारा है जिससे पहलगाम का पोषण होता है।

पर मेरे हृदय में तो यही जिज्ञासा है कि पहलगाम कब तक शिशु बन कर अपनी माँ की गोद में रहेगा? अनंत काल से तो उसका यही हाल है। तब क्या उसका शैशव अनंत शैशव है?

तब तो प्रभु! मेरा यौवन भी तुम अनंत यौवन कर दो!

९

# चिनार, पाइन और देवदारु

सुहावना समय। पक्षियों का कलरव एक श्रांत
की भाँति धीरे धीरे कम होता हुआ बंद हो
सजीव हो कर भी मौन थी मानो एक षोडशी
ानी वृद्धावस्था का स्वप्न देख कर जाग उठी हो।
ाका में चिनार, पाइन और देवदारु के वृक्ष हिम
ण धारण कर चुके थे। उनका यह स्वरूप उस
ान था जो धीरे धीरे अज्ञात रूप से जीवन की
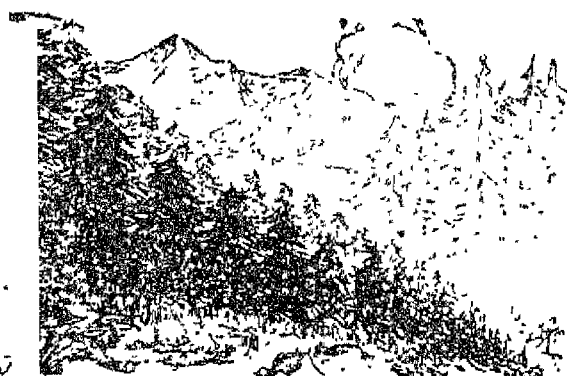
संध्या में श्वेत केश-राशि से संयुक्त होता जाता है !

मैंने निश्चल भाव से इन वृक्षों की ओर देखा। इतने विशाल वृक्ष ! इन पर भी हिम का प्रभाव !! सृष्टि की विशाल से विशाल वस्तु नियति की आज्ञाकारिणी सेविका है।

मैंने कहा—चिनार और देवदारु के समान मैं भी महान् और यशस्वी हो सकता हूँ पर उस समय भी प्रकृति का थोड़ा भी विपर्यय मेरी महानता के स्वरूप को दो क्षणों में परिवर्तित कर सकेगा। क्या मैं इतना असहाय हूँ ? मैंने निराशा की दृष्टि से चारों ओर देखा !

उस समय एक पक्षी न जाने क्यों भविष्य की आशंका से अकस्मात् कराह उठा था !

१०

## बेचारा पुष्प

न जाने कितने दिन बीत गए !

कोई भी जन इस वन में विकसित जन्म भर की आकांक्षा लिए इन छवि के कोमल अवतारों को—पुष्पों को—देख कर उनकी प्रशंसा करने नहीं आया। यही कारण है कि ये फूल ा कर अपनी आकांक्षा और इच्छा अपनी सुगंधि में दिन भर किसी के आने की बाट जोहते रहते हैं। नहीं आता तो वे संध्या समय अपने समस्त सौरभ शा से फेंक कर मुरझा जाते हैं !

आज मैं आ गया !

ऐसा मालूम हुआ जैसे फूल ं और भी खिल उठा। उसकी ो अधिक मादक जान पड़ी। उसने

जैसे मुझ से कहा—अह्, आओ मेरे प्राण, कितने दिनो से तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है ! अब कहीं तुम आये हो। देखो ! मुझे देखो ! !

मैंने फूल को झुक कर देखा—उसे ओंठों से लगाया—चूमा और उसे सुगंधि की साँस लेते हुए ही छोड़ दिया। मैंने मुड़-कर देखा—फूल किसी हृदय के टुकड़े की भाँति लतिका के वक्ष पर रक्खा हुआ था। वह अपने वृंत पर उसी प्रकार हिल रहा था जैसे प्रेमावेश में किसी तरुणी के ओंठ।

दूसरे दिन मैं लौटा। देखा, फूल मुरझाया हुआ था। क्यों, अब फूल क्यों मुरझा गया ? अब तो मैं उसका उपासक—भक्त—प्रियतम—आ गया था ! मैंने सोचा—शायद, मेरे चुंबन के उल्लास को वह सहन नहीं कर सका। नन्हा-सा रेशम की पतली धारियों से भी सूक्ष्म केसर की रेखा से बना हुआ उसका हृदय मेरे चुंबन की मादक भावना के बोझ को कैसे सहन कर सका होगा ?

तब क्या प्रभु ! दोनों प्रकार से—दुख और सुख में—मुरझाना ही अंतिम परिणाम है ?

## ११

# दर्शन
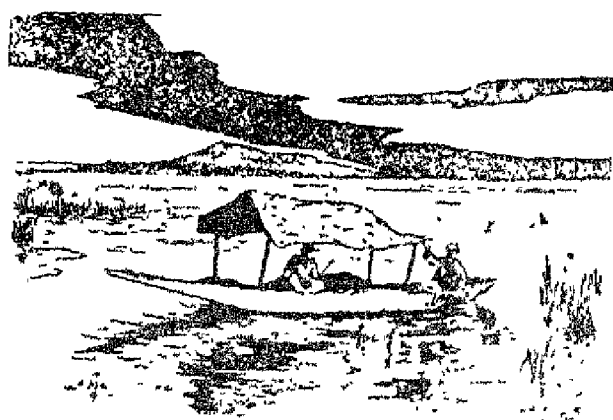
प्रिये ! मैंने तुम्हें देखा है !

जब डल झील में सद्यः प्रस्फुटित कमलों के बीच से मेरा शकारा जा रहा था, तब उन कमलों की मनोहर पंक्तियों को हाथ से छू कर मैंने केसर से रँगे तुम्हारे गौर वर्ण सुकोमल हाथों के स्पर्श का सुख पाया था !

जब मानसबल के पवित्र जल में मैंने नीचे की मछलियों

को—नीचे की ओर तैरती हुई मछलियों को—देखा था तो तुम्हारे श्वेत दुकूल के कोने से लज्जा के बोझ से झुकी हुई आँखें दीख पड़ी थीं।

जब वुलर लेक के अपरिमित विस्तार में मैंने जल-राशि के ऊपर सिंघाड़ों की बेल में हरीतिमा के दर्शन किए तो ज्ञात हुआ कि यह तुम्हारे हरे उत्तरीय का भाग है जिसके नीचे सैवार की भाँति तुम्हारी कुंतल-राशि है।

प्रिये ! मैंने काश्मीर की झीलों के सहारे तुमसे इतनी दूर रह कर भी तुम्हारे दर्शन कर लिए।

१२

# खिलनमर्ग

खिलनमर्ग के समतल पर पुष्प-राशि बिखर रही है। मानो विश्व के यौवन की विभूति यहीं एकत्रित है!

दो-चार पुष्प उठा कर तो विश्वात्मा मेरे संसार की के अंग में नव यौवन की सृष्टि करता है!

ान के लिए इससे अच्छा और कौन-सा स्थान होगा!

निखरी हुई पृथ्वी की सेज पर जहाँ फूल अपनी सुरभि ा हुए संसार में आन्दोलित हो रहे थे—दृष्टि डाली। म हुआ, यह मेरे परिणय की प्रथम रात्रि तो नहीं है जहाँ ुंदर सेज है? जहाँ वर्तमान का आलिंगन किये हुए भविष्य के दो घंटों की अस्पष्ट छाया में मेरे आलिंगन धिक सुखकर बनाने के लिए किसी ने अपने कोमल हाथों ुष्प इस सेज पर सजा कर रख दिए हों!

मैंने पृथ्वी की इस निखरी हुई सेज पर उन पुष्पों के हृदय से अपना हृदय मिला कर विश्राम किया।

वे मेरे आलिंगन से मुरझाने के बदले और भी खिल उठे ! पुष्पों की यह रसिकता, यह प्रसन्नता और यह साहस देख कर मुझे एक क्षण यह आशंका हुई कि कहीं इन पुष्पों ने मुझे स्त्री तो नही समझ लिया !

## १३

## वन-पुष्प

मेरी शैया के सिरहाने कितने प्रकार के वन-पुष्प विकसित हो उठे हैं! ज्ञात होता है मानो रात के सभी सुनहले स्वप्न एक बार मेरी आँखों में साकार हो कर मेरे सिर के समीप ही बिखर गए हैं। जब मेरी आँख खुली तो मेरे

समीप ही किसी पुष्प ने खिल कर अपनी सुगंधि मेरे समीप भेज कर अपने अस्तित्व की सूचना दे दी।

मैंने सोचा—मेरे पार्थिव शरीर के समीप यह सौंदर्य-निधि क्यों अपना हृदय खोल कर हँस रही है? संभवतः मुझे यह विश्वास दिलाने के लिए कि मेरे पार्थिव शरीर के समीप ईश्वर की अनंत शक्ति है!

१४
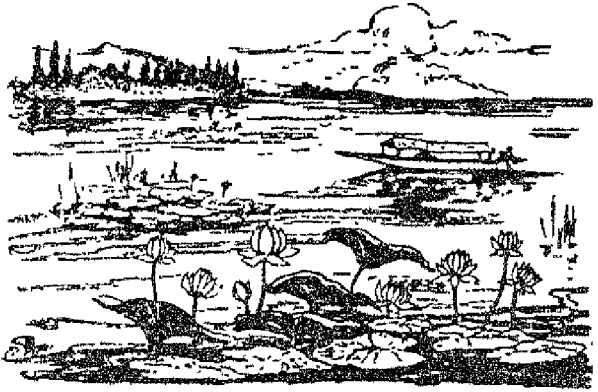
## मानसबल

मानसबल काश्मीर में सब से सुंदर झील है। किंचित् हरीतिमा लिए हुए उसका पानी बिलकुल स्वच्छ है मानो किसी ने पन्ने को गला कर उसमें भर दिया है। उसी मानसबल के तीर पर मेरे शिकारे को देखने के लिए कुछ बालक और बालिकाएँ एकत्रित थीं। बालिकाओं में एक किशोरी भी थी। वह [illegible] शिकारे के अत्यंत समीप आकर खड़ी हो गई और मेरे [illegible] [illegible] हल-दृष्टि से देखने लगी। उसका नाम था

जैना । चौदह वर्षों ने आत्म-समर्पण कर उसे सौंदर्य से सँवारा था । उसकी भोली आँखों ने संसार का रेशमी आवरण नहीं देखा था । मैं उसकी सुंदर मुखाकृति देख कर उसके चित्र लेने से अपने को न रोक सका । कुछ हँस कर—कुछ संकुचित हो कर वह भी सामने खड़ी हो गई जैसे लज्जा और मुस्कान की इंद्र-धनुषी रेखा हो । उस निरीह किन्तु महान् सौंदर्य को एक क्षण में अंकस्थ करने के लिए मैंने अपने हृदय के समान ही उस कैमरे को आगे बढ़ाया ।

पर दूसरे ही क्षण मैंने देखा—सारे फिल्म समाप्त हो चुके थे । मैंने कैमरे को घृणा और विरक्ति की दृष्टि से देखते हुए एक ओर फेंक दिया । वह मेरे सामने इस समय धातु और कपड़े से बना हुआ हृदय-हीन एक जड़ पदार्थ ही था !

और जैना ! वह सलज्ज मुस्कान के साथ सामने खड़ी थी, जैसे स्वयंवरा हो !

मैंने ठंडी साँस में शब्दों को पिरो कर कहा—जैना कैमरा ठीक नहीं है, कल आओगी ? कल चित्र खींचूंगा ।

उसकी मुस्कान जैसे हवा में खो गई । उसने आँखों से

कहा—नहीं।

मैं उसका चित्र न ले सका!

अपनी शक्तियों को साधारण संसार की वस्तुओं में बिखेर कर हम कभी कभी अपने हृदय को अलौकिक शक्तियों से समन्वित नहीं कर सकते। और तब? तब हम सोचते हैं कि हमारे पास हृदय का एक कोना भी खाली नहीं है जिसमें हम जीवन को पवित्र करने वाली उस ईश्वरीय निधि के लिए लेने का प्रयास भी कर सकें।

# पर्वत-पथ

यह पथ पर्वत पर किस प्रकार चढ़ता चला जाता है जैसे मेरी महत्त्वाकांक्षा अपने आदर्श पर ! मार्ग में कितनी

झाड़ियाँ—कितने गड्ढे हैं पर पथ टेढ़ा हो कर—तिरछा हो कर उस पर चढ़ा हुआ है। कठिनाइयों को मार्ग में देख कर क्या उसी कौशल से अपना मार्ग बना कर मैं अपने इच्छित स्थल तक नहीं पहुँच सकता ?

मैं भी तो पथ की भाँति संसार की विपत्तियों से पद-दलित हो रहा हूँ !

## १६
# प्रतिबिंब

मानसबल के निर्मल जल में जब मैंने अपनी दृष्टि डाली तो नीचे की सभी वस्तुएँ स्पष्टता के साथ दीख पड़ीं। उसी समय आशा के समान विविध रंगों से रंजित एक पक्षी अपनी गति की रेखा में संगीत का रंग भरते हुए उड़ गया। उसका प्रतिबिंब जल के ऊपर एक रंगीन लहर बन कर निकल गया। नीचे और ऊपर के प्रतिबिंबों ने मानसबल को एक संत के हृदय के समान बना दिया जिसमें निरंतर लौकिक और अलौकिक भावनाओं का प्रतिबिंब पड़ा करता है।
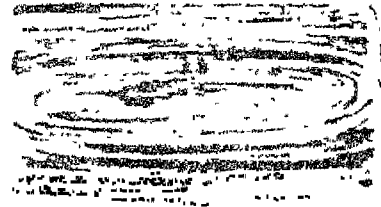
निर्झर
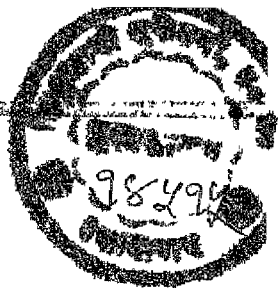
प्रभु ! यह निर्झर नहीं है—मेरी कविता बह रही है ! लाओ, इससे तुम्हारे चरण धो कर इसे संसार को पवित्र करने के लिए प्रवाहित कर दूँ ।

अनंत काल से यह निर्झर हमारे-तुम्हारे प्रेम का रहस्य कह रहा है। उस रहस्य का कभी अंत होगा या नहीं, यह स्वयं निर्झर नहीं जानता !

इस निर्झर को इकट्ठा कर यदि कोई मेरे हृदय में भर दे तो मैं संसार में प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ कवि हो सकता हूँ। प्रभु ! क्या तुम ऐसे जादूगर हो सकते हो ?

यह निर्झर सन्यासी बन कर वन में विचर रहा है ! सन्यासी की भाँति पवित्र तो है पर गंभीर कहाँ है ?

प्रकृति ने निर्झर से कहा—वत्स ! लौटोगे नहीं ? तुम शिशु हो, बहुत दूर चले गए। अब तुम्हें निर्जन वन में डर लगेगा, गिरते हुए तुम्हें चोट लगेगी !

निर्झर ने हँस कर कहा—माँ ! जो मधुर संगीत तुमने मुझे सिखलाया है, उसके गाने से डर नहीं लगता !

प्रकृति ने कठोर हो कर कहा—और चोट भी नहीं लगती ?

निर्झर ने कहा—जितनी चोट लगती है माँ, उससे दूना उत्साह मिलता है।

प्रकृति ने झुँझला कर निर्झर के मार्ग में एक बड़ा-सा पत्थर रख दिया। निर्झर पत्थर से ठोकर खा कर और भी उज्ज्वल हो उठा !

हँसती हुई लहरें किस सरलता से अपने अंत की ओर जाती हैं। जीवन की इससे अधिक क्या सफलता होगी ?

निर्झर ने एक क्षण भर रुक कर यह नहीं सोचा कि पत्थर के लगने से उसके हृदय में कितनी वेदना है! प्रिये, मेरे प्रेम के प्रवाह में अपनी दशा सोचने का अवकाश नहीं है।

कुंज में खिली हुई कलिका ने फूल से मुसकराते हुए कहा—
"मैं कृष्ण हूँ और तुम राधा!
फूल ने हँस कर कहा—और, तुम्हारी मुरली कहाँ है!
कलिका ने समीप के निर्झर की ओर झुक कर कहा—यह है।
निर्झर ने यह प्रेम का नाटक देखा—और सुना! उसने कलिका के द्वारा दिए हुए गौरव के पाने के लिए अपना स्वर और भी मधुर करना चाहा।

जब स्वर मधुर न बन सका तो वह ईर्ष्या की हिंसा से अपने प्रवाह में फूल और कलिका—दोनों को बहा कर न जाने कहाँ ले गया !

निर्झर मेरा बहता हुआ स्वप्न है। प्रिये, इसमें स्नान कर तुम स्वप्न ही में मुझ से मिल जाओ !

यह निर्झर पर्वत के चरण अपने हृदय में प्रतिबिंबित किए हुए है पर प्रेमावेश के कंपन में वह उन चरणों को स्थिर रूप से नहीं पकड़ सकता। इसीलिए वह प्रतिबिंब स्थिर नहीं है।

मैं निर्झर के वास्तविक रूप को कहीं न समझ लूँ इसीलिए वह हँसता हुआ न जाने कितनी तरफ झुक कर—

मुड़ कर—चंचल हो कर भाग जाता है। उसका यह विनोद रहस्य से रहित नहीं है !

प्रिये ! आओ, तुम्हें यह चंपक की माला पहना दूँ। देखो, पुरुष ने भी तो प्रकृति की इस वनस्थली को निर्झर की सफ़ेद माला पहना रक्खी है !

इस निर्झर के साथ मेरा हृदय बह गया है ! प्रिये, इसमें अपने वक्षस्थल पर्यंत आ जाओ, जिससे मैं तुम्हारा आलिंगन कर सकूँ।

हमारे और तुम्हारे प्रेम के विलास को देख कर यह निर्झर ईर्ष्या से उमड़ उठा है और व्यर्थ ही शब्द कर सारी प्रकृति को जगा देना चाहता है।

यह प्रेम-रस है जो पत्थर को भी प्यार करता है और इस प्रेम की बाढ़ में वह पत्थर जैसा हृदय भी घिस कर छोटा हो जाता है।

प्रकृति निर्झर के रूप में तिरछी दृष्टि से देख कर मानो अपने सौंदर्य की सीमा निर्धारित कर रही है।

पुरुष ! तुम्हारे वियोग में यह प्रकृति निर्झर के रूप में रो उठी है। इसकी इस अश्रु-धारा में सत्त्व की भावना है।

प्रभु ! यह मेरा प्रेम है जो दुर्गम स्थानों में खोजता हुआ अनंत काल से तुम में मिल जाना चाहता है। उसे न जाने कितने अंधकार-पूर्ण पथ पार करने पड़ते हैं। उसे मैं

आत्मा की अंधकारमयी रजनी (The Dark Night of the Soul) कह सकता हूँ।

प्रकृति देवि! यह निर्झर तुम्हारा नूपुर है। क्या मेरे गान भी तुम्हारे चरणों में कभी नूपुर की भाँति शोभित होंगे? यदि ऐसा हुआ तो मैं भी इस निर्झर की भाँति तुम्हारी गोद में अमर हो जाऊँगा।

प्रिये, निर्झर के नग्न रूप में सौंदर्य की कितनी उत्कृष्ट भावना है! उस नग्न सौंदर्य को देख कर भी वासना की छाया तक पास नहीं आती। तुम्हारे शरीर का सौंदर्य भी कितना उत्कृष्ट है! निर्झर के पवित्र और वासना-विहीन जल की भाँति तुम्हारे सुकुमार शरीर का स्पर्श मैं कितनी आकांक्षा के साथ करना चाहता हूँ! आओ, इस मिलन में प्रेम की चरमावधि है!

तुम्हारा सौंदर्य देख कर यह जल चंचल हो उठा है। अब यह शांत नहीं हो सकता। यदि तुम इसे शांत करने के लिए इसका स्पर्श भी करोगी तो यह और भी उन्मत्त हो कर शब्द करेगा। प्रेम की शक्ति कभी स्थिर हो सकती है!

उसी प्रेम की शक्ति से तो यह निर्झर इतना अशान्त है। देखो, प्रिये! एक क्षण रुकना भी इसके लिए असह्य है! पत्थर के हृदय से लग कर भी वह अपने प्रेम की व्यथा से रो उठता है। तब उसका शब्द और भी करुण हो उठता है।

यह निर्झर अवज्ञा के साथ भाग रहा है, इसीलिए तो इसे पत्थर जैसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ रही हैं।

निर्झर के बुद्बुद् मानो कलिका रूप हैं जो फूट कर सौंदर्य की सुरभि फैला देते हैं।

प्रकृति सो रही है। उसका निर्झर रूपी मन सुप्ति में न जाने कहाँ कहाँ भाग रहा है! कभी फूलों के समीप जा कर सुंदर स्वप्न देखता है, कभी भयानक शिलाओं के चरणों में लोट कर बुरा स्वप्न देखने को विवश होता है।
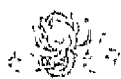
निर्झर—मानो ये प्रकृति के कंपित ओंठ हैं जो सौंदर्य की कहानी कह रहे हैं।

आज मेरे आँसू निर्झर में मिल रहे हैं। इस निर्झर में न जाने कब वे अपने चरण धोवेंगे! क्या इस जीवन में "नैनन

के जल सों पग धोए" की अतृप्त आकांक्षा भी कभी पूर्ण होगी !

निर्झर ने कितनी बार लहरों के धागों में बुद्बुद् के फूल गूँथने का प्रयत्न किया पर प्रवाह में वे फूल स्थिर न रह सके। भावावेश में भी कभी माला बनी है ?

पत्थर की ठोकर खाने पर भी जल हँस पड़ता है जिस प्रकार गिर पड़ने पर हमें भी हँसी ही आती है।

पुष्प-राशि

फूल दिन-रात अपनी आँखे खोल कर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे। अब वे नींद के बोझ से झुक कर मुरझा गए है। तुम अब भी नहीं आए, प्रभु !

ये पुष्प किसी अनिंद्य सुंदरी के सौंदर्य-वर्णन में जागृत हुए किसी कवि के भाव हैं जिन्हें लतिका-सुंदरी ने अपने अंचल में बाँध लिया है।

यह पुष्प मेरा जीवन है जिसमें तुम्हारे प्रेम की सुगंधि है। तुम्हें न पाने के कारण देखो तो, मेरी सुगंधि कहाँ कहाँ खोई जा रही है !

मेरा हृदय फूलों की भाँति ही अबोध है। जो चाहता है, उसे तोड़ कर ले जाता है। तुम मेरी रक्षा करने के लिए स्वयं अपने कोमल हाथों से तोड़ कर—अपने वक्षस्थल पर माला बना कर क्यों नहीं रख लेती, प्रिये ?

संध्या समय डल झील का यह कमल-वन अपनी पंखुड़ियाँ बंद कर रहा है। एक कमल के भीतर केवल एक भ्रमर और भ्रमरी है। प्रिये, यदि यह पृथ्वी भी एक कमल होती और सृष्टि के अंत मे जब यह अपनी पंखुड़ियाँ बंद करती तो केवल हम और तुम इसमें बंद हो कर अनंतकाल तक के लिए संयोग के सुनहले स्वप्न में शयन करते !

ईश्वर ने जब देखा कि यह संसार बहुत दुखी है तो उसने इस बात का पूर्ण निश्चय करने के लिए फूलों के हृदय में

छिप कर बैठना सीखा। फूलों ने सुरभि के द्वारा इस मधुर संवाद की घोषणा कर दी। पर मूर्ख संसार उस घोषणा को अभी तक नहीं समझ सका!

गुलाब जब तक जीवित है, अपनी हँसी में झूमता है। उसने अपने विकास के समय मलीन हो कर यह नहीं कहा कि मुझ में इतने काँटे हैं।

प्रत्येक पुष्प एक गीत है जिसमें 'अलि' का संबोधन है।

खिलनमर्ग के समतल पर फैली हुई ये छोटी छोटी पुष्प-राशियाँ तुम्हारे नूपुर की बिखरी हुई ध्वनियाँ हैं जिन्हे पृथ्वी ने अपने हृदय से लगा लिया है। रहस्यवाद की चरम अभिव्यक्ति में

जब इंद्रियाँ अपना कार्य-व्यापार परस्पर बदल लेती हैं, मैं कान से सुनने के बदले इन ध्वनियों को स्पष्ट देख रहा हूँ।

सुमन ने कलिका के समीप झुक कर कहा—प्रिये, यह अवगुंठन खोलो। जीवन तो थोड़ा है। आओ, मेरे हृदय से लग जाओ! देखो, मेरे हृदय में तुम्हारे अनुराग की कितनी अधिक लालिमा है!

कलिका ने मान से सिर हिला कर 'नहीं' का संकेत किया। एक क्षण बाद मानिनी कलिका ने मुसकरा कर छिपे हुए नेत्रों से फूल की ओर मिलनोत्सुकता से देखा।

उस समय तक फूल पृथ्वी पर मुरझा कर गिर पड़ा था।

प्रिये, ये पीले रंग के फूल खिल कर मुझे बार बार चिढ़ा रहे हैं। इनका मान-भंग करने के लिए लाओ, मैं तुम्हारे केसर

से रँगे हुए उत्तरीय का चुंबन कर लूँ।

इस एकांत में भी जहाँ निस्तब्धता का साम्राज्य है, ये फूल सौरभ के शब्दों में कलियों से प्रेम के रहस्य का प्रदर्शन करते हैं जिससे हम उस भाषा को समझ न सकें। प्रिये, क्या मैं भी कलियों से अधिक उज्ज्वल तुम्हारे मुख के समीप अपने ओंठों से प्रेम के रहस्य का प्रदर्शन नहीं कर सकता? उससे तो तुम्हारे संकोच के कारण निस्तब्धता और भी बढ़ जायगी!

प्रिये, ईश्वर हमारे लिए ऐसे संसार का निर्माण करता जहाँ पुष्प ही बादल होते और सुगंधि ही की वर्षा होती। हम दोनों भ्रमर के पंखों पर बैठ कर वसंत-श्री की गोद में अमर विहार करते।

# बादल

आकाश बादलों के रूप में उस अनंत शक्ति को अनेक रूपों में लिखना चाहता है। किंतु वह शक्ति इतनी विस्तृत है कि बादल उसका बोझ न सम्हाल सकने पर काँपते हैं, अस्थिर होते रहते हैं और अंत में पानी-पानी हो जाते हैं।

बादल निराश प्रेमी की भाँति आकाश के न जाने कितने स्थानों में घूम आया, पर उसे किसी ने भी शरण नहीं दी। वह अंत में विद्युत् की तीक्ष्ण धारा से आत्म-घात कर पृथ्वी पर रोते हुए गिर पड़ा। क्या प्रेम का अंतिम परिणाम यही है?

ये किसी कवि के भाव हैं जो उपयुक्त शब्द न पाने के

कारण शून्य में इस प्रकार व्यथित हो रहे हैं ! बादलो, आओ, मेरे आँसुओं में भर कर मेरे बाहु-पाश में निर्भय सोती हुई सुकुमारी प्रेयसी के कपोलों पर बरस पड़ो !

घटा के काले केश-कलाप में यह इंद्रधनुष की नवीन और सद्यः प्रस्फुटित माला किसने पहना दी ?

प्रकाश भाव-विभोर हो कर देखता ही रहा !

घटा ने विद्युत् की तीव्र भाव-भंगिमा में अपने प्रियतम प्रकाश की अवहेलना की। प्रकाश मुसकरा रहा था।

घटा ने मान के क्रोध की लालिमा से प्रकाश को चले जाने का आदेश दिया। जब प्रकाश चला गया तो घटा उसके वियोग में फूट-फूट कर रोने लगी।

बादल अपनी प्रियतमा विद्युत् को रिझाने के लिए न जाने कितने रूप धारण करता है। घटता है, बढ़ता है। पर स्त्री-हृदय संभवतः सौंदर्य से नहीं, शक्ति से रीझता है चाहे वह शक्ति कुरूप से कुरूप वेश में ही क्यों न हो। तभी तो जब बादल काला हो कर शक्तिशाली गर्जन करता है तब विद्युत् तड़प कर उसका आलिंगन कर लेती है।

बादल एकांत शून्य में रोता रहता है। पर वह अपनी प्रिया पृथ्वी के सामने इंद्रधनुष की क्षणिक हँसी हँस कर कितने चातुर्य से अपने आँसुओं को छिपाता है! यह कौन जानता है, उसकी इंद्रधनुषी हँसी के भीतर कितने आँसू भरे हुए हैं!

यह घटा प्रेमावेश में वस्त्र-हीन हो गई है। इसे अपनी अपार करुणा-किरण के सहारे इंद्रधनुष के वस्त्र से सज्जित

कर दो, मेरे प्रभु !

यह बादल प्रेम के उन्माद में घूम-फिर कर सारे आकाश का शासन कर रहा है और आकाश एक सेवक की भाँति झुका हुआ खड़ा है। प्रिये ! प्रेम की शक्ति तो देखो !

यद्यपि बादल ने पृथ्वी का संपर्क त्याग दिया है और अब वह शून्य में विचरण कर रहा है पर अब भी उसकी वासना नहीं गई। वह विद्युत् के रूप में तड़प उठती है।

ये किस प्रेमी के हृदय के टुकड़े हैं जो सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश को रोकने में भी समर्थ हैं? अपने प्रियतम से

वियोग हो जाने पर ये प्रलय-धारा बरसाने के लिए उन्मत्त हो उठे हैं।

संसार की वेदना देख कर बादल एक बार ही काँप उठा है। वह उस वेदना की अग्नि को अपनी करुणा की अश्रु-धारा से शांत कर देना चाहता है। देखो तो, वह अपना अस्तित्व खो कर भी संसार को सुखी कर देना चाहता है।

प्रत्येक बादल एक महाकाव्य है जिसमें वर्षा, विहार, चंद्र-दर्शन और सूर्योदय है। उसमें अनेक प्रकार की ध्वनियाँ भी हैं।

बादल ने तुम्हें रिझाने के लिए एक गान गाया। पर उसके कर्कश स्वर पर तुम विद्युत् की भाँति हँस पड़े।

वह लज्जित हो कर पानी-पानी हो गया !

प्रिये ! तुम तारों के समान कितनी उज्ज्वल हो ! जब मेरी भावना वायु के पंखों पर चढ़ कर तुम्हारे केशों में फूल की भाँति गुँथ जाती तो ये बादल फैल कर परदे का रूप रख लेते ! संसार की कलुषित आँख से बच कर हम और तुम आकाश को प्रकाशमान कर देते !

सूर्य का प्रखर उत्ताप था। उठते हुए बादल ने सरोवर की जल-राशि के आलिंगन-पाश से हटते हुए कहा—प्रिये, विदा दो। मैं नृशंस सूर्य के समीप जा कर उसे पृथ्वी की करुण-कथा सुनाऊँगा।

जल-राशि ने कहा—फिर कब आओगे मेरे प्राण !

बादल ने जल-राशि को चिढ़ाने के लिए हँसते हुए कहा—कभी नहीं।

जल-राशि उदास हो कर बोली—मैं तो रो कर स्वयं ही अश्रु-मय हो रही हूँ। और किस प्रकार रोऊँ!

बादल ने मुसकरा कर कहा—न, मत रोओ, मैं स्वयं द्रवित हो कर तुम्हारे पास आऊँगा!

प्रिये! यह संयोग और वियोग की कहानी तो हमारी-तुम्हारी कहानी ही है!

बादल ने कितना तीव्र नाद किया। किंतु संसार ने देखा कि उस तीव्र नाद के भीतर कितना कोमल हृदय छिपा हुआ है!

ये बादल प्रेम के शब्द हैं जो अस्फुट रूप में निकलने के कारण विकृत हो गए हैं। अपने ही भावों के बोझ से ये अपना पथ भूल गए हैं! इसीलिए तो ये यहाँ-वहाँ बिखर रहे हैं।

ये बादल ! जल मानो वैराग्य ले कर शून्य में भाग जाना चाहता है। प्रभु ! हमारे-तुम्हारे मिलने के पूर्व ही ये बादल सृष्टि के तत्त्वों के क्रम का विपर्यय कर प्रलय कर देने के लिए उत्सुक जान पड़ते हैं !

यह प्रेम से परिपूर्ण गद्गद् हृदय है जो करुणा के आँसुओं से भीगा है। उसे आकाश के समान अपने विस्तीर्ण वक्षस्थल में स्थान दो ! इसे शरद बादल की भाँति निर्मल और शांत कर दो मेरे प्रभु !

तुम्हें न पाने पर मेरे ईश्वर, पृथ्वी ने बादल के रूप में अपना उच्छ्वास छोड़ा है ! तुम विद्युत् बन कर उसे आ-लोकित क्यों नहीं कर देते ?

बादल मेरे हृदय का प्रेम है जो संकुचित और विस्तृत हो कर तुम्हें पाना चाहता है ! न मिलने पर आँसुओं के रूप में बरस पड़ता है !

ये बादल काले और सफ़ेद हो कर आकाश में फैल रहे हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे किसी विरहिणी गोपिका ने कृष्ण को पहनाने के लिए जुही की माला गूँथी है पर वह कहीं-कहीं काजल के रंग से श्यामल बनी हुई अश्रु-धारा से काली हो गई है। उसमें कितने आँसू भर रहे हैं ! कवि ! श्रीकृष्ण क्या गोकुल नहीं लौट सकते ?

बादल पर्वत के चारों ओर है ! मानो वह अपने उल्लास में अपनी प्रियतमा पृथ्वी को अपने शरीर से लपेट लेना चाहता है।

वृक्ष-राजि

पृथ्वी पर एक पैर से खड़े हो कर ये वृक्ष आकाश में कितने विस्तृत हो गए हैं ! पृथ्वी पर जो जितना कम स्थान लेता है, आकाश में उसे उतना ही अधिक स्थान प्राप्त होता है।

ये वृक्ष केवल मिट्टी से अपना जीवन-रस लेते हैं और उसे हरीतिमा में परिवर्तित कर देते हैं जिस प्रकार मैं रूखे और मिट्टी के समान निरर्थक व्यक्तियों से अपने जीवन के महान् सिद्धांत बनाता हूँ।

ये वृक्ष हमारे और तुम्हारे मिलन की स्मृतियाँ हैं जो अभी तक हरी हैं।

यद्यपि वृक्ष पृथ्वी से दूर आकाश में भागता है तथापि वह स्नेहमयी जननी पृथ्वी से रस पाता ही रहता है। इससे तो यह ज्ञात होता है कि वृक्ष इतने ऊँचे बढ़ने पर भी शिशु के समान है क्योंकि वह अपनी माँ की गोद में है।

ये वृक्ष आकाश में जा कर न जाने किसे चूमना चाहते हैं ? मेरी अतृप्त आकांक्षा के समान ही ये अपनी भावना में असफल और मौन हैं।

अनेक प्रकार के वृक्ष एक ही आकाश में जा रहे हैं जिस प्रकार एक ईश्वर पाने के लिए अनेक धर्मों के भिन्न भिन्न मार्ग हैं।

विधि ने मेरी पृथ्वी के सौंदर्य को वृक्ष की लकीरें खींच

कर गिना है। लेकिन कहीं सौंदर्य भी गिना गया है!

यह वृक्ष समय की भाँति विस्तृत है। और मैं पल्लव की भाँति उससे जुड़ा हुआ हूँ।

आकाश ने जो करुण बादलों का वरदान पृथ्वी को दिया है उसी का आभार तो कहीं पृथ्वी वृक्षों के रूप में नहीं दे रही है!

संध्या के समय वृक्ष मौन खड़े हैं जिस प्रकार जीवन पर्यंत तुम्हारी प्रतीक्षा कर मैं भी एकाकी और चुपचाप खड़ा हुआ हूँ।

यह पृथ्वी का प्रेम है जो शून्य में भी पुलकित है। अपने आप ही बढ़ कर यह स्वयं संतुष्ट है।

प्रिये ! तुम्हारे चिंतित मस्तक पर हरे रंग का विंदु देख कर ये वृक्ष आकाश के श्याम-पटल पर अपने हरे पल्लवों से न जाने कितने हरे विंदु अंकित कर देना चाहते हैं।

कोई यशस्वी जिस प्रकार मिट्टी में मिल जाने पर भी अपना यश पृथ्वी पर छोड़ जाता है उसी प्रकार ये वृक्ष भी मिट्टी में मिल कर अपना रूप आकाश के क्रोड़ में छोड़ रहे हैं।

पर्वत अपना पथरीला रूप छिपाने के लिए वृक्षों का
रा कपट-जाल पहने हुए हैं।

वायु का आलिंगन करने के लिए वृक्षों ने अपने को न जाने
कितने पल्लवों में विभाजित कर दिया है ! वृक्ष के समान मैं भी
अपने को कितने ही रूपों में विभाजित कर तुम्हारा आलिंगन
करना चाहता हूँ, मेरे ईश्वर !

मानो पृथ्वी हमारे-तुम्हारे मिलन पर गान के रूप में वृक्षों
में फूट पड़ी है।

पृथ्वी पर अधिक बोझ न पड़े इसलिए ये वृक्ष आकाश
में अपना बोझ रखने के लिए जा रहे हैं। लेकिन ये मूर्ख

यह नहीं समझते कि वह बोझ भी पृथ्वी पर ही पड़ रहा है ।

वृक्षों की पंक्ति इस प्रकार है जैसे वन ने हज़ारों हाथ उठा कर अपने महत्त्व की घोषणा की है ।

यह हरा वन-खंड है जैसे प्रकृति ने पृथ्वी की गिलास में खस का हरा शर्बत भर कर आकाश की सेवा में प्रस्तुत किया है ।

पृथ्वी के हृदय में जड़ के विचारों से पैठ कर ये वृक्ष आकाश से भू-मंडल का समस्त रहस्य कहने के लिए खड़े हुए हैं । उन रहस्यों को सुनने के लिए आकाश ने तारों के कर्ण-रंध्र खोल दिए हैं ।

इस वृक्ष ने हमारे मिलन-स्थान के निर्माण के लिए कितनी शाखाएँ फैलाई हैं? आओ! किसी भी शाखा की छाया में मैं तुम से मिल जाऊँ। मेरा न सही, इस वृक्ष का निमंत्रण तो स्वीकार करो।

हरे वृक्ष की जड़ों में कितना अंधकार है! ऊपर की हरियाली लाने के लिए जड़ों को कितने विरोधों का सामना करना पड़ा है! इस पर क्या किसी ने विचार किया है? यदि स्वयं पल्लवों को यह रहस्य बतलाया जाय तो वे क्या इस पर विश्वास करेंगे?

पेड़ ने वसंत से कहा—तुम बार बार आ कर क्यों चले जाते हो? मुझे इस प्रकार हँसा कर रुलाने में तुम्हें क्या मिलता है? इस बार आए हो तो ठहरो।

वसंत ने पेड़ को चूमा और कहा—अब न रुलाऊँगा और अब न जाऊँगा।

कुछ दिनों बाद वृक्ष ने देखा कि जो फूल वसंत ने दिए हैं उनमें काले कीड़ों ने वास कर लिया है और भ्रमरों की काली भीड़ ने उसके चारों ओर शोर करने वाला एक चंचल कारागार-सा बना लिया है।

उसने कातर हो वसंत से कहा—मुझे सुख का बंधन नहीं चाहिए।

वसंत हँसता हुआ चला गया।

ये वृक्ष—पृथ्वी ने आकाश के तारे गिनने के लिए अपनी उँगलियाँ तो नहीं उठाईं!

# शैल-शृंग

यह प्रेम की समाधि है।

यह पर्वत है जिसमें पृथ्वी अनंत शक्ति का स्पर्श करने पर हर्षोल्लास में थक कर सो गई है। ज्ञात होता है कि अनंतकाल तक इसकी निद्रा भंग न होगी।

यह पर्वत—मानो पृथ्वी संसार का वीभत्स कार्य-कलाप देख कर वनांत में सिकुड़ कर बैठी हुई है। और अपने हृदय में वेदना का अंधकार लिए हुए है।

यह पर्वत मौन हो कर भी कितना महान् है !

इस पर्वत की मूर्खता तो देखो—यह खड़ा हो कर भी सोता है !

यह नीरस पर्वत सो रहा है। इसीलिए तो इसे असावधान पा कर इसका सारा सौंदर्य इसे सोता छोड़ कर भाग गया है।

पर्वत ने वृक्ष से कहा—कहाँ तक बढ़ते जाओगे ?

वृक्ष ने उत्तर दिया—बहुत दूर।

पर्वत ने कहा—मुझ से बहुत दूर !

वृक्ष बोला—तुम्हारा गौरव बढ़ाने के लिए तुम से दूर हो जाऊँगा।

पर्वत ने कहा—तो फल और फूल तो मुझ से दूर ही लगेंगे। कितना अच्छा होता यदि तुम अपने फल अपनी जड़ में ही उत्पन्न करते; वे मेरे पास ही रहते।

कुछ दिन बाद वायु के वेग से वृक्ष गिर पड़ा। अब उसके फल और फूल पर्वत के अत्यंत निकट होने पर भी किसी काम के नहीं थे।

हिम-हास

शैल-शृंग पर यह हिम का हास कितना मनोहर है!
मानो बादलों ने दृढ़ हो कर पर्वत का आलिंगन किया है।

प्रकृति ने अपने शिशु पर्वत को बार-बार चूमा है। ये हिम-खंड उसी चुंबन के चिह्न हैं।

रात की चाँदनी पर्वत पर सो रही है। इस स्थान पर उसे ऐसी मीठी नींद आई है कि दिन निकल आने पर भी वह सोई हुई है।

पर्वत पर विहार करते हुए मेरी प्रियतमा का श्वेत उत्तरीय तो यहाँ नहीं रह गया !

शैल-शृंगों पर हिम-राशि—जैसे पृथ्वी को देखने के लिए पर्वत पर स्वर्ग उतर आया है।

पर्वत आकाश से मिलने के लिए अपनी सात्विकता में उज्ज्वल हो उठा है। पृथ्वी पर रहते हुए भी उसकी आध्यात्मिकता तो देखो !

यशस्वी जीवन जिस प्रकार विपत्तियों पर रखा रहता है उसी प्रकार यह हिम काली शिलाओं पर पड़ा हुआ है।

उजाड़ पर्वत पर हिम-राशियाँ ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो पुण्य के ओंठ पाप का चुंबन कर रहे हैं।

पृथ्वी पर रहते हुए मलीनता है। पर आकाश में उठने पर जीवन कितना उज्ज्वल हो जाता है!

यह पर्वत वृद्ध तो नहीं हो गया? उसके सिर पर श्वेतता आ गई है।

मुझे तो ज्ञात होता है कि यह हिम-राशि नहीं है। यह पर्वत के जीवन का उज्ज्वल स्वप्न है। या उसकी साकार अनुभूति है। यह अपना सर्वश्रेष्ठ भाग ऊपर कर आकाश से मुक्ति माँग रहा है और भस्म से विभूषित हो कर समाधि-मग्न है।

काले पर्वत ने रावण की भाँति हीरकों से सज्जित मुकुट धारण किया है और उसके बाहु-पाश मे अनेक श्वेत-वस्त्रा सुंदरियाँ हैं ।

ये दैवी वरदान है जो मूर्ख पर्वत की गोद में निरर्थक पड़े हुए हैं ।

किसी साधु ने इस पर्वत को छू कर इसके मस्तक को पवित्र कर दिया है ।

पर्वत पर यह हिम-हास नहीं है, मेरी गौरव-श्री आकाश में मुसकरा रही है ।

# पंक्ति-निर्देश

पृष्ठ